ISSN 2278-8808 IMPACT FACTOR: 1.38
An International Peer Reviewed
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

पुरुषार्थ चतुष्ट्य

पल्लवी सिंह, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा

पुरुषार्थ शब्द पुरुष और अर्थ के योग से निर्मित हुआ है। पुरुष का अभिप्राय होता है जीवात्मा से और अर्थ का उद्देश्य से। "पुरुष" का तात्पर्य है– "पुरि शरीरे शेते इति पुरुषः" इसका सम्मिलित अर्थ है, जीवात्मका का उद्देश्य। जीवात्मा का परम लक्ष्य होता है, परमात्मा से सम्मिलित होना और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जिन उपायों को वह काम में लाता है, वे ही पुरुषार्थ के अंग कहलाते हैं। धर्मार्थ काम मोक्षाख्यं पुरुषार्थ चतुष्टयम्[1]। ये अंग हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हें ही दूसरे शब्दों में पुरुषार्थ चतुष्ट्य कहा जाता है। इन्हें ही कतिपय विद्वान वर्ग चतुष्ट्य भी कहते हैं। इन्हीं चार पुरुषार्थों का अनुगमन करके मनुष्य लौकिक एवं पारलौकिक सुख समृद्धि एवं मोक्ष प्राप्त किया करता है। संभवतः इसी कारण हमारे प्राचीन मनीषियों ने मानव जीवन में इनको अनिवार्य मानते हुए इनके सम्यक् परिपालन का उपदेश दिया है। प्राचीनकाल में मनुष्य पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए पूर्ण रूप से प्रयत्नशील रहता था। सामाजिक जीवन में इनका महत्व था।

पुरुषार्थ चतुष्ट्य में सर्वप्रथम स्थान है धर्म का "धारयित धर्मः"। **(धारणाद्ध धर्ममित्याहूः। धर्मो धारयते प्रजा। यः स्यात् धारणासंयुक्त स धर्म इति निश्चयः।।)**[2] अर्थात जो जीवन में धारण किया जाता है वही धर्म कहलाता है। धारण का अर्थ है, रक्षा करना या पोषण करा। प्राचीन मनीषियों ने धर्म को कर्त्तव्य का पर्याय माना है। वास्तव में सत्कर्म का पालन ही धर्म है। कणाद् मुनि ने धर्म का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहा है। यतोऽभ्युदनिः श्रेयसः सिद्धिः सः धर्मः।[3] अर्थात् जिससे कल्याण और उन्नति हो वही धर्म है। जिन कार्यों से सामाजिक समरसता बनी रहे उन्हें ही हम धर्म कहते हैं। जिस समाज व देश में धर्म की भावना धूमिल हो जाती है, वह समाज व राष्ट्र शीघ्र ही पतनोन्मुख हो जाता है। अतः समाज एवं राष्ट्र की प्रगति हेतु धर्म का पालन आवश्यक है। धर्म के पालन द्वारा ही मानव की रक्षा सुदृढ़ होती है।

धर्म का स्वरूप कल्याणकारी है। धर्म का पालन करने से मानव की सुरक्षा सुदृढ़ होती है। इससे व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास तो होता ही है; साथ ही आध्यात्मिक विकास भी होता है। धर्म को कर्त्तव्य का पर्यायवाची माना गया है। कर्त्तव्य एवं सद्आचरण का पालन करना ही धर्म है।

भारतीय संस्कृति जीवन में धर्म को सर्वोच्च स्थान देती है। धर्म से न केवल व्यक्ति एवं समाज की ही उन्नति होती है, अपितु राष्ट्र का उत्कर्ष भी धर्म के मूल में ही निहित है। मानव जीवन को अबाध गति से एवं सुचारू रूप से चलाने वाला प्रमुख साधन धर्म ही है।

सम्पूर्ण विश्व का आधार धर्म ही है। धर्म ही ऐसा तत्व है जो अन्य सभी पुरुषार्थों में अनुस्यूत है। मोक्ष के लिए धर्म अनिवार्य है। भारतीय धर्मशास्त्रकारों के अनुसार तो धर्म एक जीवन शैली है, जो सभी प्रकार के सदाचारों से युक्त होने की सीख देती है।

मनुस्मृति में– **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्दूियनिग्रहः।**

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। मनुस्मृति 6/92

अर्थात् धृति (धैर्य), क्षमा, दम (तपस्या), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान विद्या, सत्य, अक्रोध तथा अहिंसा इस प्रकार ये दस कारक हिन्दू धर्म के लक्षण हैं। यही दसों कारण ही धर्म के तत्व हैं। इनकी युक्तिसंगत निर्वहन मानव कल्याण हेतु अनुसरणीय है। उक्त दस में से दो तत्वों का भी अनुसरण मनुष्य को संत की श्रेणी में ला देता है। वास्तव में धर्म के मूल दो तत्व हैं, "सत्य और अहिंसा"। उपनिषद् में **अहिंसा परमो धर्मः** ऐसा कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति, विष्णु पुराण, विष्णु धर्म आदि में उल्लेखित है कि दसों तत्वों को धारण करने वाला व्यक्ति निःसंदेह ईश्वरत्व को प्राप्त होता है। नर से नारायण बनने की प्रक्रिया में इस तथ्य का उल्लेख है।[5] इन्हीं दस तत्वों का धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के पुरुषार्थ से आबद्ध संस्कृति में दिनचर्या तथा ऋतुचर्या के अनुरूप आचरण पुरुषार्थों में किया जाता है।[6] इससे व्यक्ति का शारीरिक, आध्यात्मिक और मानसिक विकास होता है।

अर्थ, पुरुषार्थ चतुष्ट्य का द्वितीय महत्वपूर्ण अंग है। अर्थ का 'शाब्दिक अर्थ है– धन। **अर्थ्यते सर्वैः इति अर्थः**। मानव जीवन में धर्म के साथ–साथ अर्थ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बीसवीं शताब्दी में तो पूर्णतः जीवन एवं समाज अर्थ प्रधान हो गया है। जबकि प्राचीनकाल का जीवन इतना अर्थ प्रधान नहीं था। आजकल तो अनुचित ढंग से अर्जित द्रव्य भी धर्म की श्रेणी में आता है। जबकि प्राचीनकाल में समुचित ढंग से अर्जित द्रव्य ही धन की श्रेणी में आता था। जो धर्माचरण पूर्वक उचित ढंग से अर्जित किया गया है। अधर्म या अनुचित ढंग से अर्जित धन को अनिष्टकारी बतलाया गया है। मानव जीवन का आधार अर्थ ही माना गया है। जीवन को सुचारू रूप से चलाने हेतु तथा जीवन की दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अर्थ की नितान्त आवश्यकता होती है। आचार्य कौटिल्य ने देश का मूल ही अर्थ माना है। **"राष्ट्रस्य मूलअर्थः"।** धर्म के समान ही यह भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए अनिवार्य माना गया है। इसी के द्वारा मानव जीवन को सुखमय बनाता हुआ कालान्तर में मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हुआ करता है। अर्थ उसी धन का परिचायक है जो धर्माचरणपूर्वक अर्जित किया गया है। मनुष्य की भौतिक उन्नति की कुन्जी अर्थ ही है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए व्यक्ति के लिए अर्थ का संचय, धर्म पालन करने के लिए अर्थ की आवश्यकता विशेष रूप से होती है। किन्तु अर्थ से जीवन का निर्वाह नैतिकतापूर्वक ही होना चाहिए, अन्यथा वह अर्थ जीवन के लिए सार्थक नहीं होगा। यह सुख

वैभव के उपभोग का एक साधन है, आनन्द की प्राप्ति एवं कामनाओं की पूर्ति का साधन है। इसका स्थान सर्वप्रमुख नहीं है, वह जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं है। वर्तमान युग में अर्थवान् व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इसलिए समाज का प्रत्येक व्यक्ति इसकी इच्छा करता है। धनवान व्यक्ति के सभी अवगुण छुप जाते हैं और उसके गुणों की गणना की जाती है– सर्वे गुणाः कान्चनमाश्रयन्ते।[7] भारतीय धर्म ग्रंथों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अर्थ का प्रयोग धर्म के अनुकूल किया जाए, तो वह अर्थ और भी उत्कृष्ण हो जाता है। धर्म हीन अर्थ के अर्जन से अनर्थ की आशंका रहती है। श्रीमद्भागवत पुराण में धर्महीन अर्थ के प्रयोग को व्यर्थ बताया है। व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार धन संग्रह करे।[8] महर्षि कौटिल्य ने "त्रिवर्ग" में 'अर्थ' को प्रधान मानकर धर्म एवं कर्म का मूल बताया है।[9] **वृत्तिमूलम् अर्थलाभः**। अर्थात् अर्थ लाभ का मूल वृत्ति है।[10]

काम, पुरुषार्थ चतुष्ट्य का तीसरा अंग है। "काम" शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है, इच्छित वस्तु को चाहना। **काम्यते जनैरितिः कामः सुखः** अर्थात् वह सुख जिसकी कामना मनुष्यों द्वारा की जाए वही वास्तव में काम है। यही काम सृष्टि का मूल कारण एवं शाश्वत सुख का केन्द्र स्थल माना गया है। वर्तमान युग के समान प्राचीन काल में काम केवल भोग विलास का ही परिचायक नहीं था, अपितु इसमें धर्म एवं सात्विकता की प्रधानता मानी गयी है। प्राचीन काल में गृहस्थाश्रम में प्रविष्टि होने वाले व्यक्ति धर्म सम्मत काम को ही धारण किया करते थे। काम का अनुसरण कर जहाँ गृहस्थ घन सृष्टि के निर्माण में योगदान देते थे, वहाँ वे सन्तानोत्पत्ति कर पितृऋण से भी मुक्त होते थे। गीता में श्रीकृष्ण ने भी धर्मयुक्त काम को मुख्य स्थान दिया है। उनका कथन है–

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्तिभरतवर्षभः।[11]

वास्तव में भारतीय संस्कृति में इसी धर्म को मान्यता दी गयी है। धर्म युक्त काम निश्चय ही इष्टकारी एवं सृष्टि के सृजन में सहयोग देने वाला है और इसके विपरीत अधर्म युक्त काम ध्वंसात्मक एवं अनिष्टकारी माना गया है। धर्म युक्त काम में मनुष्य भौतिक सुख में भी आध्यात्मिक सुख की अनुभूति करता है। वर्तमान युग में काम व्यभिचार युक्त एवं उन्मुक्त है। वस्तुतः धार्मिक एवं नैतिक काम को ही हमारे वेदों में स्थान प्रदान किया है। धर्मशास्त्रों में काम की स्वाभाविकता के साथ–साथ उसको अर्थ के नियन्त्रण में भी किया है। काम सृष्टिमूलक है तथा जीवन में सम्मिलित है। काम की पवित्रता बनी रहे अतः उसे धर्म से नियंत्रित रखा गया है। धर्म, अर्थ और काम का संयोग सफल गृहस्थ जीवन हेतु आवश्यक है।

मोक्ष– अन्तिम अंग है। मानव जीवन की परिणति इसी में मानी जाती है। मोक्ष का वास्तविक अर्थ होता है, मुक्ति प्राप्त करना और यह मुक्ति सांसारिक दुःखों अथवा आवागमन के चक्र से ही की जाती है। "मुच्यते सर्वदुःख बन्धनैर्यत्र स मोक्षः।" इस मुक्ति प्राप्ति हेतु प्राचीन मनीषियों ने योग, साधना, तपस्या, सच आदि उपाय बताये हैं। प्राचीन मुनियों ने सर्वस्व न्योक्षावर किया है। संसार त्रिविध दुखात्मक माना गया है। इसमें दैहिक, दैविक और आध्यात्मिक दुःखों की स्थिति मानी जाती है। इन

तीन प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाने की विधि ही मोक्ष कहलाती है। स्वर्ग प्राप्ति मोक्ष नहीं है, क्योंकि पुण्यों के क्षीण हो जाने पर जीवात्मा को पुनः इसी मर्त्युलोक में आना होता है। अतः विविध दुःखों से छुटकारा पाना ही वास्तविक मोक्ष कहलाता है। बौद्ध मतावलम्बी मोक्ष को 'निर्वाण' कहते हैं। **"निर्गतो वाणः तापो यस्मात् तत् निर्वाणम्।"** शोक जनित, कायिक, वाचिक और मानसिक आदि समस्त तापों की शान्ति को निर्वाण कहते हैं। सांख्य दर्शन **'कैवल्य'** को मोक्ष कहता है। योग दर्शन **समाधि–सिद्ध** हो जाने को मोक्ष कहता ाहै। मीमांसा प्रपंच सम्बन्ध मिट जाना मोक्ष बताता है।

वेदान्त दर्शन में **जीव–ब्रह्म के ज्ञान** को मोक्ष माना गया है। **'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'** इस प्रकार ब्रह्म जीव के ऐक्य, मिलन का ज्ञान होने और मोक्ष मार्ग का प्रशस्त होना माना गया है। न्याय दर्शन यथार्थज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति बतायी है। श्री वल्लभाचार्य ने भक्ति से ही मुक्ति का विधान माना है। मोक्ष प्राप्ति उपरान्त व्यक्ति जीवन मृत्यु आवागमन चक्र से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के भी तीन मार्ग हैं – (1) कर्म योग (2) ज्ञान मार्ग (3) भक्ति मार्ग। इन मार्गों पर चल व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

पूर्व वर्णित तीन अंग अन्तिम अंग का सोपान है। नरधारी मनुष्य के समीप इन चारों पुरुषार्थों में से एक भी पुरुषार्थ नहीं है, तो निश्चय ही उसका जन्म बकरी के गले में लटके हुए स्तनों के समान निरर्थक है –

"धर्मार्थकाममोक्षाणां यास्यैकेऽपि न विधते।"

अजागलस्तनस्यैक तस्य जन्म निरर्थकम्।।

मानव जीवन की चरम परिणति इन्हीं चार पुरुषार्थों में मानी गयी है।

सन्दर्भ सूचीः

मार्कण्डेय पुराण अ० 41/191/2
शान्तिपर्व. 108/11/
कणाद वैशेषिक सूत्र, धर्म का लक्षण। वैशेषिक दर्शन 1/2
मनुस्मृति 6/92
याज्ञवल्क्य स्मृति – 1.3, विष्णु पुराण – 3.6, विष्णु धर्म – 1.74.33
तत्र तत्र हि दृष्यन्ते प्रकृतिभ्य परं यत्र तदचिन्त्यस्य लक्षणम्– महाभारत भीष्म पर्व।
नीति शतक
मनुस्मृति – 2/12
वैशेषिक दर्शन – 1/2 कौटिल्य अर्थशास्त्र
वैशेषिक दर्शन – 1/2
श्रीमद्भगवदगीता।

सहायक ग्रंथ–

हिन्दू धर्म – स्वामी विवेकानन्द
भारतीय संस्कृति एक जीवन दर्शन – श्रीराम शर्मा
भारतीय संस्कृति की भूमिका – हृदयनरायण दीक्षित
वैदिक साहित्य का इतिहास – डॉ० बल्देव उपाध्याय
भारतीय धर्म एवं दर्शन – डॉ० बल्देव उपाध्याय
भारतीय संस्कृति की रूप रेखा – डॉ० मीरामणी
प्राचीन भारतीय संस्कृति के तत्व – डॉ० शशि तिवारी